Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 9.134
Volume - 8, Issue - 12, December - 2025

DOIs:10.2018/SS/202512002 --:-- Research Paper / Article / Review

सांख्य दर्शन में प्रकृति-पुरुष सिद्धान्त की समीक्षा

[1] डॉ. विनोद कुमार राय, [2] डॉ. वन्दना कुमारी

[1]सहायक प्राध्यापक (सीनियर स्केल), स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, एस.एस. कॉलेज, जहानाबाद, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार। Email: royvinodkumar@gmail.com
[2]वरीय व्याख्याता, डायट (जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान), सोनपुर, सारण, बिहार। Email: vandana.roy8@gmail.com

शोध सार: सांख्य दर्शन भारतीय तत्त्वमीमांसा की एक प्रमुख शाखा है जो सृष्टि, चेतना और प्रकृति के मूलाधार को विवेचित करती है। कपिल मुनि द्वारा प्रतिपादित यह दर्शन द्वैतवादी है, जिसमें पुरुष (चेतन तत्व) और प्रकृति (अचेतन तत्व) को - दो अनादि और स्वतंत्र तत्त्वों के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र प्रकृति-पुरुष सिद्धान्त की तात्त्विक संरचना, उसकी तार्किक समीक्षा, अन्य दर्शनों के साथ तुलना, तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: सांख्य दर्शन, प्रकृति, पुरुष, द्वैतवाद, तत्त्वमीमांसा, कपिल मुनि, मोक्ष।

1. भूमिका

जब बुद्ध ने यह घोषणा की कि 'सव्वं दुख्खं' अर्थात् 'सब कुछ दःख ही है' तो निश्चय ही इसने तत्कालीन भारतीय जन-मानस का ध्यान आकृष्ट किया और बौद्ध धर्म दिन-प्रतिदिन लोगों के मन-मस्तिष्क पर प्रभाव छोड़ने लगा। प्रत्येक व्यक्ति ने इस घोषणा को अपनी अंतरात्मा की आवाज के रूप में अनुभव किया। वस्तुत: मानव-जीवन में विविध प्रकार के दु:ख हैं और वह अपने दु:खों से निवृत्ति के उपायों को खोजने में निरंतर प्रयत्नशील रहता है। किंतु मानव का प्रयास किसी दु:ख विशेष के लिए होता है किंतु भारतीयों दार्शनिकों ने भी दु:ख से निवृत्ति के विषय में ही चिन्तन किया परन्तु उनका चिन्तन आत्यन्तिक दु:ख निवृत्ति से था। भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य केवल सैद्धांतिक ज्ञान नहीं, बल्कि मोक्ष की प्राप्ति है। सांख्य दर्शन इस दिशा में ज्ञानमार्ग का अवलम्बन करता है। कपिल मुनि द्वारा प्रतिपादित 'सांख्य' शब्द का अर्थ 'संख्या' या 'गणना' से है, जो सांख्य के 25 तत्त्वों की विवेचना पर आधारित है। इस दर्शन का केंद्रीय सिद्धान्त है — प्रकृति और पुरुष का द्वैत। जहाँ पुरुष चेतन, निष्क्रिय, शुद्ध साक्षी है, वहीं प्रकृति अचेतन, सक्रिय, परिवर्तनशील और सृष्टि की कारणभूत है।

2. शोध के उद्देश्य

- सांख्य दर्शन में प्रकृति-पुरुष सिद्धान्त की तात्त्विक व्याख्या करना।
- इस सिद्धान्त की तार्किक समीक्षा एवं उसके दार्शनिक प्रभावों का मूल्यांकन करना।
- अन्य भारतीय दर्शनों, विशेषतः वेदांत और योग, से इसकी तुलनात्मक समीक्षा करना।
- आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान के सन्दर्भ में इस सिद्धान्त की प्रासंगिकता दिखाना।

3. प्रकृति-पुरुष सिद्धान्त का तात्त्विक आधार

प्रकृति-पुरुष सिद्धान्त का तात्त्विक आधार प्रकृति और पुरुष के क्रिया-कलापों और भेदों-प्रभेदों के विवरण में अंतर्हित है। सांख्य के पच्चीस तत्त्वों का उद्गम प्रकृति है, जिसे मूल प्रकृति या प्रधान कहा गया है। यह मूल प्रकृति अविकृति है अर्थात् यह किसी से उत्पन्न नहीं होती है और अव्यक्त अवस्था में रहती है। महदादि प्रकृति की व्यक्तावस्था हैं।[1] सांख्यकारिकाकार ने कहा है कि मूल प्रकृति प्रधान है जो उत्पन्न नहीं होता है बल्कि मूल प्रकृति से महदादि (बुद्धि, अहंकार, पाँच तन्मात्राएँ- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) उत्पन्न होते हैं जो व्यक्त अवस्था वाले हैं। इनकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है- प्रकृति से महद् (महान्) अर्थात् बुद्धि, बुद्धि से अहंकार,

[1] दृष्टवदानुश्रविक: स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्त:। तद्विपरीत: श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।। (सांख्यकारिका, 2)

अहंकार से सोलह का समूह (पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन) उत्पन्न होते हैं। पुन: पाँच तन्मात्राओं से पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु) उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रकृति ही मात्र प्रकृति है, विकृति नहीं है किंतु बुद्धि, अहंकार, पंच तन्मात्राएँ आदि उत्पत्ति क्रम में पूर्व की विकृति हैं और पर की प्रकृति हैं। पुरुष न तो प्रकृति है अर्थात् उत्पन्न करने वाला, और न ही विकृति अर्थात् उत्पन्न होने वाला है।[2]

सांख्य दर्शन ने अव्यक्त प्रकृति को त्रिगुणात्मिका माना है अर्थात् प्रकृति में सत्त्व, रज और तम – ये तीनों गुण विद्यमान हैं जो सृष्टि के पूर्व साम्यावस्था में होते हैं और चैतन्य पुरुष के सम्पर्क में आने के पश्चात् विक्षोभोपरान्त वैषम्य को प्राप्त होते हैं।

सृष्टि के क्रम में मूला प्रकृति (प्रधान) से महत् तत्त्व या बुद्धि तत्त्व उत्पन्न होता है। बुद्धि तत्त्व अध्यवसायात्मक है। किसी कार्य को करने में किये जाने वाले निश्चय को अध्यवसाय कहते हैं। बुद्धि सात्विक और तामस के भेद से दो प्रकार की होती है। सात्विक बुद्धि में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य होते हैं जबकि तामसिक बुद्धि में धर्मादि के विपरीत अधर्मादि होते हैं।[3] तामसिक बुद्धि पुरुष के लिए भोगों को सम्पादित करती है और सात्विक बुद्धि प्रधान और पुरुष के सूक्ष्म अन्तर को व्यक्त करती है।[4]

बुद्धि से अहङ्कार की उत्पत्ति होती है। वैकृत, भूतादि और तैजस् के रूप में अहङ्कार के तीन भेद हैं। वैकृत अहङ्कार में सात्त्विक गुण है जिससे ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन) अभिव्यक्त होती हैं। भूतादि अहङ्कार में तमो गुण की विशिष्टता है जिससे पाँच तन्मात्राओं की अभिव्यक्ति होती है। तैजस् अहङ्कार में रजोगुण की विशेषता होती है, यह चलायमान गुण वाला है। सात्त्विक गुण वालों को वैकृत अहङ्कार और तमो गुण वालों को भूतादि अहङ्कार उनके कार्य सम्पादन में सहायता करता है।[5]

तमोगुणविशिष्ट भूतादि अहङ्कार से पाँच तन्मात्राएँ अभिव्यक्त होती हैं, अत: इनका स्वरूप तामसिक है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को तन्मात्रा कहने का उद्देश्य यह है कि उनके अर्थ को सीमित करना, जैसे गन्धतन्मात्रा का अर्थ है कि गन्ध ही मात्र। इसी प्रकार अन्य भी सीमित अर्थ में हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तन्मात्राओं से क्रमश: आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी पञ्च महाभूतों की अभिव्यक्ति होती है। तन्मात्राओं को सूक्ष्मता के कारण अविशेष कहा गया है और स्थूलता के कारण विशेष कहे गये पँच महाभूतों को सुखजनक, दु:खजनक और मोहजनक कहा गया है।[6]

अव्यक्त और व्यक्त दोनों रूपों में प्रकृति त्रिगुणात्मिका होने के साथ-साथ अविवेकी अर्थात् जडत्व के कारण स्वयं को अन्य से भिन्न करने में असमर्थ, विषय अर्थात् ज्ञानरहित सबके लिए भोग्य, सामान्य अर्थात् साधारण लोगों के लिए, अचेतन अर्थात् चेतन 'ज्ञ' से भिन्न जड़, और प्रसवधर्मी अर्थात् अन्य को उत्पन्न करने का स्वभाव है। इसके विपरीत पुरुष गुणरहित, विवेकी, अविषय, असामान्य, चेतन और अप्रसवधर्मी है। व्यक्त प्रकृति के धर्म हेतुमान् क्योंकि महत् से लेकर पञ्च तन्मात्रा तक प्रत्येक अपने परवर्त्ती तत्त्व की अभिव्यक्ति का हेतु है, अनित्य क्योंकि परिवर्त्तनशील है, अव्यापी क्योंकि ये सीमाबद्ध हैं, सक्रिय क्योंकि प्रत्येक व्यक्त तत्त्व अपने रजो गुण के कारण अपने परवर्त्ती तत्त्व की अभिव्यक्ति के लिए क्रियाशील है, अनेक क्योंकि महद्, अहङ्कार आदि के रूप में ये एकाधिक हैं, आश्रित क्योंकि प्रत्येक व्यक्त अभिव्यक्त होने के लिए अपने पूर्ववर्त्ती व्यक्त के कारणत्व पर आश्रित हैं, लिङ्ग अर्थात् लय के काल में ये अपने-अपने कारणों में लय को प्राप्त होते हैं, सावयव और परतन्त्र है जबकि पुरुष अहेतुमान्, नित्य, व्यापी, अक्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्ग, निरवयव और स्वतन्त्र है।[7]

3.1 पुरुष की संकल्पना

सांख्य दर्शन का तीसरा तत्त्व 'ज्ञ' अर्थात् पुरुष है। 'ज्ञ' अर्थात् पुरुष दो प्रकार के हैं- 'ज्ञ' और बद्ध पुरुष। 'ज्ञ' एक ही है जैसा कि सांख्यकारिका[8] में कहा गया है, किंतु बद्ध पुरुष अनेक हैं। मूला प्रकृति की तरह 'ज्ञ' भी अव्यक्त है। यह परोक्ष और बुद्धि से जाना

---

[2] मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या: प्रकृतिविकृतय: सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति: पुरुष:॥ (सांख्यकारिका, 3)
प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशक:। तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्य: पञ्च भूतानि॥ (सांख्यकारिका, 22)

[3] अध्यवसायो बुद्धि: धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्। सात्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्॥ (सांख्यकारिका, 23)

[4] सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धि:। सैव च विशिनष्टि पुन: प्रधांपुरुषाऽन्तरं सूक्ष्मम्॥ (सांख्यकारिका, 37)

[5] अभिमानोऽहङ्कारस्तस्माद् द्विविध: प्रवर्त्तते सर्ग:। एकादशकश्च गणस्तन्मात्र: पञ्चकश्चैव॥ (सांख्यकारिका, 24)
सात्त्विक एकादशक: प्रवर्त्तते वैकृतादहङ्कारात्। भूतादेस्तन्मात्र: स तामसस्तैजसादुभयम्॥ (सांख्यकारिका, 25)

[6] तन्मात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पञ्च पञ्चभ्य:। एते स्मृता विशेषा: शान्ता: घोराश्च मूढाश्च॥ (सांख्यकारिका, 38)

[7] हेतुमदनित्यमवयापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्। साऽवयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥ (सांख्यकारिका, 10)
त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीस्तथा च पुमान्॥ (सांख्यकारिका, 11)

[8] त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीस्तथा च पुमान्॥ (सांख्यकारिका, 11)

जाने योग्य नहीं है। यह त्रिगुणों (सत्त्व, रज और तम) से परे है। यह निर्लिप्त या तटस्थ है। बुद्धि से अज्ञेय होने के कारण यह प्रत्यक्ष प्रमाण से जानने योग्य नहीं है। इसका कोई लिङ्ग या हेतु नहीं है अत: अनुमान प्रमाण से भी 'ज्ञ' को सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस प्रकार सांख्य ने अपने त्रिविध प्रमाणों[9] में प्रत्यक्ष और अनुमान से अज्ञेय पुरुष को जानने का एकमात्र साधन अथवा प्रमाण शब्द को ही माना है। पुरुष के अस्तित्व की सिद्धि के लिए सांख्यकारिका में ईश्वरकृष्ण कहते हैं कि ऐसा अनुभव में देखा गया है कि जितने भी संघात (मिश्रित या अवयवयुक्त) पदार्थ हैं, वे सभी किसी अन्य के उपभोग के लिए होते हैं। महदादि व्यक्त तत्त्व संघात ही हैं और ये सभी पुरुष के भोग के लिए हैं, अत: पुरुष की सिद्धि होती है कि वह विद्यमान है। पुरुष अधिष्ठाता है क्योंकि रथ को चलायमान करने के लिए चेतन सारथि का होना आवश्यक है उसी प्रकार अचेतन अव्यक्त और व्यक्त की प्रवृत्ति के लिए पुरुष का होना आवश्यक है। भोक्तृभाव चेतन में ही होता है जो पुरुष मात्र है। कैवल्य के प्रति प्रवृत्ति भी बद्ध की ही होगी जो पुरुष है।[10] पुरुष को गुणरहित, विवेकी, अविषय, असामान्य, चेतन और अप्रसवधर्मी कहा गया है और इसके विपरीत व्यक्त और अव्यक्त (मूल प्रकृति और महदादि) को कहा गया है जो सिद्ध करता है कि पुरुष की विद्यमानता है।[11] पुरुष में कर्तृत्व का भ्रम उसका अचेतन के साथ सम्पर्क के कारण होता है जबकि वह तो अकर्त्ता है। अनुभव में देखा गया है कि घड़ा जब शीत या ऊष्मा के सम्पर्क में आता है तो उसे 'घड़ा ठण्ढा है' या 'घड़ा गर्म है' ऐसी प्रतीति होती है जो वस्तुत: शीत या ऊष्मा के सम्पर्क से सम्पर्क के कारण है।[12] सांख्यकारिकाकार ने पुरुष की संख्या के विषय में अनेक पुरुष को माना है। उनका कहना है कि यदि पुरुष एक ही होगा तो एक का जन्म होने से सभी का जन्म सम्भव होगा और एक की मृत्यु होने से सबकी मृत्यु हो जायेगी जो संसार में ऐसा अनुभवसिद्ध नहीं है। इंद्रिय-वैकल्य की समस्या भी पुरुष का बहुत्व सिद्ध करती है। सत्त्व, रज और तम – इन त्रिगुणों का वैषम्य भी पुरुष की एकाधिकता सिद्ध करती है।[13] पुरुष प्रकृति से पूर्णत: विपरीत है। इसी कारण से वह निर्गुण, विवेकी, अविषय, असामान्य, चेतन, अपरिणामी या अप्रसवधर्मी है। इस विपर्ययता के आधार पर उस पुरुष का साक्षी होना, केवल अर्थात् परम विशुद्ध और आत्यन्तिक दु:खरहित होना, मध्यस्थ अर्थात् तटस्थ या उदासीन या रागद्वेषशून्य होना, द्रष्टा या ज्ञाता अर्थात् शुद्धचैतन्यस्वरूप होना, तथा कर्त्ता या कर्तृत्व एवं परिणाम से सर्वथा रहित होना सिद्ध होता है।[14]

3.2 प्रकृति-पुरुष सम्बन्ध की समीक्षा

प्रकृति और पुरुष के स्वरूप पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि इन दोनों में कोई साम्य नहीं है, अत: इनमें संयोग होने का एकमात्र आधार है- दर्शन और कैवल्य। पुरुष प्रकृति से दर्शन के लिए जुड़ता है अर्थात् पुरुष प्रकृति तथा महदादि के परिणामों को देखने के लिए प्रकृति से संयोग करता है और प्रकृति (प्रधान) कैवल्य के कारण पुरुष के साथ संयोग करती है। ज्ञान की प्राप्ति के बाद पुरुष और प्रकृति विलग हो जाते हैं। इनका संयोग अंधे और लंगड़े के समान है जो परिस्थितियों के वशीभूत होकर संयुक्त होते हैं और अपने गन्तव्य को प्राप्त कर विलग हो जाते हैं।[15]

पुरुष और प्रकृति के सम्बन्धों की समीक्षा करते हुए चंद्रधर शर्मा अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन में कहते हैं,

"सांख्य का प्रमुख दोष उसका द्वैतवाद है। पुरुष और प्रकृति को दो नितान्त भिन्न स्वतंत्र तत्त्व मानना सांख्य की प्रमुख भूल है। विषयी और विषय, प्रमाता और प्रमेय सापेक्ष हैं तथा एक पारमार्थिक तत्त्व के दो रूप हैं। सांख्य दर्शन में अन्तर्निहित तर्क उसे अद्वैतवाद की ओर प्रेरित कर रहा है, किन्तु सांख्य उस पर ध्यान न देकर द्वैतवाद से ही चिपक रहा है। यदि पुरुष और प्रकृति दो स्वतन्त्र और निरपेक्ष तत्त्व हैं, तो उनका किसी प्रकार संयोग नहीं हो सकता और संयोग के अभाव में सर्ग नहीं हो सकता। प्रकृति अचेतन है, पुरुष उदासीन है, और इन दोनों को मिलाने वाला कोई तीसरा तत्त्व नहीं है, अतः दोनों का मिलन असम्भव है । हम ऊपर बता चुके हैं कि न तो पुरुष-प्रकृति का संयोग और न संयोगाभास और न पुरुषसन्निधिमात्र सृष्टि के विकासक्रम का समाधान कर सकते हैं। यदि प्रकृति जड़, अचेतन और अन्ध है, तो सृष्टि-विकास यान्त्रिक होना चाहिये, यदि प्रकृति और महत् से लेकर महाभूत तक की सारी सृष्टि पुरुष के भोग और अपवर्ग रूपी प्रयोजन की सिद्धि के लिये हैं, जैसा सांख्य बारम्बार साग्रह प्रतिपादन कर रहा है, तो प्रकृति की अचेतनता और स्वतन्त्रता सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि अचेतन का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता और स्वतन्त्र तत्त्व परार्थ-साधन नहीं बन सकता । सांख्य ने कहा है कि अचेतन दूध बछड़े के पोषण के लिये प्रवृत्त होता है । यह दृष्टान्त सही नहीं है क्योंकि गाय

[9] दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाण सिद्धत्वात्। त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धि: प्रमाणाद्धि॥ (सांख्यकारिका, 4)
[10] संघातपरार्थत्वात्त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्। पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥ (सांख्यकारिका, 17)
[11] त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीस्तथा च पुमान्॥ (सांख्यकारिका, 11)
[12] तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्। गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीन:॥ (सांख्यकारिका, 18)
[13] जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च। पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥ (सांख्यकारिका, 19)
[14] तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य। कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टुत्वमकर्तृभावश्च॥(सांख्यकारिका, 20)
[15] पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य। पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृत: सर्ग:॥ (सांख्यकारिका, 21)

और बछड़ा दोनों चेतन प्राणी हैं और गाय के थनों में दूध मातृस्नेह के कारण उतरता है। पंगु-अन्ध न्याय भी पुरुष और प्रकृति पर नहीं लगता, क्योंकि पंगु और अन्ध दोनों चेतन व्यक्ति हैं, समान स्तर के हैं, उनका एक लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति के लिये वे सहयोग करते हैं। किन्तु पुरुष चेतन और प्रकृति अचेतन है, अतः दोनों समान स्तर के नहीं हैं और न दोनों का कोई प्रयोजन हो सकता है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार कर्ता का ही कर्मफल का भोग करना पड़ता है । सांख्य ने प्रकृति में कर्तृत्व और पुरुष में भोक्तृत्व का आरोप करके कर्मवाद को ठुकरा दिया है एवं कृतनाश तथा अकृतागम के दोषों को निमन्त्रण दिया है। प्रकृति विविध व्यञ्जन बनाना जानती है, किन्तु उनका उपभोग करना नहीं जानती! और पुरुष बिना किये कर्मों का फल भोगता है! पुनश्च, यद्यपि सांख्य प्रकृति को स्वतन्त्र और निरपेक्ष तत्त्व स्वीकार करता है, तथापि सांख्यदर्शन में प्रकृति की पुरुष-सापेक्षता पदे-पदे परिलक्षित होती है। पुरुष के संसर्ग के बिना प्रकृति सृष्टि नहीं कर सकती । चेतन द्वारा अधिष्ठित हुये बिना प्रकृति में विक्रिया नहीं हो सकती । तब प्रकृति स्वतन्त्र कैसे मानी जा सकती है? यदि वह स्वतन्त्र है तो पुरुष का प्रयोजन सिद्ध कैसे कर सकती है? यद्यपि सांख्य ने प्रकृति को निर्वैयक्तिक बताया है; तथापि प्रकृति के वर्णन में उसके व्यक्तित्व की झलक बराबर मिलती है । प्रकृति स्त्री है। प्रसव-धर्मिणी है। नर्तकी के समान प्रदर्शन करती है । गुणवती है । उपकारिणी है । सदा पुरुषार्थसिद्धिहेतु प्रयत्नशील रहती है। पुरुष के लिये बँधती है, संसरण करती है और सुकुमार है। लज्जाशीला है । जो पुरुष उसे देख लेता है, उसके सामने फिर कभी नहीं आती। मुक्त होती है। क्या ऐसी प्रकृति अचेतन, स्वतन्त्र, निरपेक्ष तथा निर्वैयक्तिक मानी जा सकती है? सांख्य में वेदान्त अन्तर्निहित है । प्रकृति को पुरुष की शक्ति मानने से सांख्य के अन्तर्विरोध दूर किये जा सकते हैं। सांख्य को विशुद्ध चैतन्यस्वरूप पुरुष में तथा अन्तःकरण-प्रतिबिम्बितचैतन्यरूप जीव में भेद करना चाहिये, किन्तु सांख्य इस भेद को भूल कर दोनों को एक ही मान लेता है। यह सांख्यदर्शन का एक बड़ा दोष है। सांख्य पुरुष को शुद्धचैतन्य-स्वरूप, स्वप्रकाश, नित्य, साक्षी, द्रष्टा, निर्गुण, निर्विकार तथा ज्ञान एवं अनुभव का अधिष्ठान मानता है । यह पुरुष का पारमार्थिक या वास्तविक स्वरूप है जो बन्धन, संसरण और मोक्ष की कल्पनाओं से सर्वदा अस्पृष्ट है । जब पुरुष बुद्धि में प्रकाशित अपने प्रतिबिम्ब को ही अपना असली स्वरूप मान लेता है तब वह बद्ध जीव प्रतीत होने लगता है । यह जीव प्रमाता और भोक्ता है । जन्म, मृत्यु, इन्द्रिय आदि का प्रतिनियम जीवों में सिद्ध होता है और जीव अनेक माने जाते हैं । बन्धन, संसरण और मोक्ष भी जीवों के होते हैं। किन्तु सांख्य पुरुष और जीव के भेद को भूल कर पुरुष को अनेक मानता है, निर्गुण पुरुष में गुणों के न्यूनाधिक्य का प्रतिपादन करता है, नित्य पुरुष को जन्म-मरण-शील मानता है, विभिन्न पुरुषों में अन्तःकरण तथा बाह्यकरण का भेद स्वीकार करता है, तथा साक्षी एवं निर्विकार पुरुष में भोक्तृत्व की कल्पना करता है। पुरुष के वास्तविक स्वरूप के प्रतिपादन में भी वेदान्त अन्तर्निहित है । यदि सांख्य पुरुष को एक, और अनेक जीवों को पुरुष के विभिन्न आभासों के रूप में मान ले तो उसके अन्तर्विरोध मिटाये जा सकते हैं । अन्यथा द्वैतवाद तथा वस्तुवाद के प्रबल मोह ने सांख्य को अन्तर्विरोधों की परम्परा में जकड़ दिया है ।

सांख्य ने मोक्ष का कैवल्य को दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति मात्र माना है। उसे अखण्ड आनन्दरूप नहीं माना है । यह भी सांख्यदर्शन का एक दोष है । सांख्य के अनुसार सुख सत्त्वगुण का कार्य है और मोक्ष निर्गुण स्थिति है, अतः मोक्ष में सुख नहीं हो सकता । सुख दुःख-सापेक्ष हैं, अतः सुख के साथ दुःख भी रहेगा। मोक्ष सुख-दुःखातीत है; वहाँ सुख, दुःख और मोह की कल्पना नहीं की जा सकती । जिस प्रकार सांख्य ने पुरुष और जीव का भेद भुला दिया है, उसी प्रकार उसने अखण्ड आनन्द और लौकिक सुख का भेद भी भुला दिया है । मोक्ष का आनन्द विशुद्ध चैतन्य का ही स्वरूप है; मोक्ष में सत्, चित् और आनन्द का भेद नहीं है; जो विशुद्ध सत् है वही विशुद्ध चित् है और वही विशुद्ध आनन्द है । यह नित्य आनन्द अनित्य तथा लौकिक विषय-सुख से सर्वथा भिन्न है । यह आनन्द सुख और दुःख दोनों से रहित है और दोनों के ऊपर है । अतः मोक्ष को निवृत्ति के साथ अखण्डानन्दस्वरूप मानना आवश्यक है। विशुद्ध पुरुष को आत्मा या ब्रह्म के समान अद्वितीय तत्त्व के रूप में अङ्गीकार करना, प्रकृति को पुरुष की मायाशक्ति के समान स्वीकार करना, पुरुष की मायाशक्ति से विविध जीवों तथा विविध जगत्पदार्थों के रूप में प्रतीति मानना; प्रकृति-परिणामवाद के स्थान पर पुरुष-विवर्तवाद स्वीकार करना; मोक्ष की आत्यन्तिक निवृत्ति के साथ नित्यानन्द-स्वरूप मानना सांख्य को विरोधों से मुक्त करके उसे श्रुति-सम्मत दर्शन के रूप में अद्वैत वेदान्त की पूर्व भूमि सकता है।"[16]

4. निष्कर्ष

यह सत्य है कि सांख्य में पुरुष और प्रकृति दो स्वतन्त्र और निरपेक्ष तत्त्व हैं, किंतु उनका संयोग हो सकता है जैसे चुम्बक और लौह का। यह संयोग वस्तुत: सन्निधि है और इस सन्निधि के कारण प्रकृति में चेतनता और पुरुष में भोक्तृभाव परिलक्षित होते हैं। इसी चेतनता के प्रभाव में आकर प्रकृति सर्ग के लिए प्रवृत्त होती है। सांख्य के समस्त उदाहरणों में सन्निधि का भाव है जैसे- नर्त्तकी और दर्शक, अंधा और लंगड़ा, अचेतन दूध द्वारा बछड़े का पोषण इत्यादि।

कर्मसिद्धान्त के अनुसार कर्ता ही कर्मफल का भोक्ता होता है। परन्तु सांख्य दर्शन में प्रकृति में कर्तृत्व माना गया है, पुरुष में भोक्तृभाव माना गया है। इस प्रकार कर्मफल की अनियमितता की प्रतीति होती है क्योंकि जो करता नहीं, वही भोगता है! इससे कृतनाश (किए

[16] चंद्रधर शर्मा (1991), भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन, पृ. 153-155

का फल न मिलना) तथा अकृतागम (न किए का फल मिलना) जैसे दोष उत्पन्न होते हैं। साथ ही, यदि प्रकृति स्वतन्त्र और निरपेक्ष है, तो पुरुष पर उसकी सापेक्षता कैसे? इसका समाधान यह हो सकता है कि कर्तृत्व–भोक्तृत्व की भिन्नता व्यावहारिक है, न कि परमार्थिक। सांख्य दर्शन द्वैतवादी है — चेतन (पुरुष) और अचेतन (प्रकृति) दो भिन्न तत्त्व हैं। "कर्तृत्व" का अर्थ यहाँ चेष्टा या प्रवृत्ति है, जो केवल प्रकृति में संभव है क्योंकि उसमें गुणत्रय (सत्त्व, रज, तम) हैं। "भोक्तृत्व" का अर्थ साक्षीभाव में अनुभव करना है, जो केवल पुरुष में संभव है क्योंकि वही चैतन्यस्वरूप है। अतः कर्म और उसका भोग, दोनों का सम्बन्ध व्यवहारिक स्तर पर परस्पर सहयोग से है, न कि एक ही सत्ता में अन्तर्निहित।

कर्मफल के भोग का अभाव नहीं बल्कि संयुक्तता के कारण अन्वय बना रहता है। प्रकृति और पुरुष का संयोग (सन्निधि) इस प्रकार है कि प्रकृति कर्म करती है, और पुरुष उसकी फल-प्राप्ति का अनुभव करता है। जैसे नाटक में अभिनेता कार्य करता है, परन्तु दर्शक उस कर्म का अनुभव करता है। यहाँ कोई "अकृतागम" नहीं, क्योंकि कर्म प्रकृति ने किया, और उसका फल उसी संयोग में पुरुष ने भोगा।

"कृतनाश" या "अकृतागम" का दोष नहीं होता, क्योंकि कर्मफल का तत्त्व प्रकृति के अन्तर्गत है। कर्म और उसका फल प्रकृति के गुणों की गति मात्र हैं, न कि आत्मा (पुरुष) में किसी परिवर्तन से उत्पन्न। पुरुष न करता है, न फल से प्रभावित होता है; वह केवल साक्षी है। "कर्तृत्व–भोक्तृत्व" का व्यवहार अविद्यावश है; ज्ञान होने पर पुरुष अपने असंगत्व को पहचान लेता है-यही कैवल्य की प्राप्ति है। अतः कर्म के परिणाम प्रकृति-प्रवृत्ति में ही समाहित रहते हैं — वहाँ "कृतनाश" या "अकृतागम" का प्रश्न नहीं उठता।

पुरुष–प्रकृति की सापेक्षता साक्षी–साक्ष्यभाव की है, निर्भरता की नहीं। सांख्य में प्रकृति को स्वतन्त्र तत्त्व कहा गया है, किन्तु वह व्यवहार में पुरुष की साक्षी से ही व्यक्त होती है। इसका अर्थ परतन्त्रता नहीं, बल्कि प्रयोजनात्मक सापेक्षता है, जैसे दीपक स्वयं प्रकाश देता है, पर वस्तु के होने से उसका प्रकाश सार्थक होता है। पुरुष के अभाव में प्रकृति निष्क्रिय रहती है, साम्यावस्था में। अतः प्रकृति "पुरुष-सापेक्ष" है सर्गार्थ, न कि सत्तार्थ।

सांख्य ने कर्मवाद का खण्डन नहीं, बल्कि उच्चतर व्याख्या की है। सांख्य कर्मवाद को नकारता नहीं, बल्कि उसका अधिभौतिक रूप प्रस्तुत करता है। सामान्य कर्मवाद "कर्तृत्व–भोक्तृत्व" को एक ही आत्मा में रखता है। सांख्य उसे विभाजित कर बताता है कि कर्म अचेतन गुणों की क्रिया है अर्थात् प्रकृति का कार्य है, और उसका अनुभव चेतन साक्षी में होता है अर्थात् पुरुष का कार्य है। यह विभाजन कर्म के तत्त्व को नष्ट नहीं करता, बल्कि उसे अद्वैत-दोष-मुक्त बनाता है।

सांख्य दर्शन में ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष और जीव में कोई भेद नहीं माना गया, और "आनन्द" तथा "लौकिक सुख" को भी एक ही माना गया है। अतः सांख्य ने आत्मा के अखण्ड आनन्द और इन्द्रियजन्य सुख में भेद भुला दिया है। वस्तुत: सांख्य ने पुरुष और जीव का भेद भुलाया नहीं, बल्कि स्पष्ट किया है। सांख्य दर्शन में "पुरुष" नित्य, चेतन, निरपेक्ष और असंग साक्षी तत्त्व है। "जीव" (व्यक्त) वह है जो पुरुष और प्रकृति के संयोग या सन्निधि से उत्पन्न अनुभवकर्ता के रूप में व्यवहार में माना जाता है। जब तक पुरुष प्रकृति के गुणों से अभिमान करता है, तब तक वह "जीव" कहलाता है; ज्ञान होने पर वही पुरुष अपने शुद्ध साक्षित्व में स्थित हो जाता है। अतः सांख्य ने भेद भुलाया नहीं, बल्कि यह दिखाया कि जीवभाव अविद्याजन्य है, न कि सत्ताजन्य। जैसे, सूर्य जल में प्रतिबिम्बित होकर "तरंगों के साथ हिलता हुआ" प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में अचल रहता है, वैसे ही पुरुष प्रकृति में प्रतिबिम्बित होकर "कर्त्ता–भोक्ता जीव" के रूप में अनुभव होता है। यह भेद व्यावहारिक है, सत्तात्मक नहीं। सांख्य में "आनन्द" और "सुख" का भी सूक्ष्म भेद स्पष्ट है। सांख्य के अनुसार, "सुख" (लौकिक सुख) प्रकृति के सत्त्वगुण का परिणाम है। यह परिवर्तनशील, सीमित और कालपर्यन्त है। अतः यह अनित्य है। जबकि "आनन्द" पुरुष का स्वाभाविक लक्षण है; यह नित्य, अद्वन्द्व, और असंग है। यह न इन्द्रिय पर निर्भर है, न किसी विषय पर। अज्ञान के कारण बन्धन है; विवेकज्ञान से मुक्ति होती है, और वही कैवल्य "आनन्दरूप" है। इससे स्पष्ट है कि "कैवल्यजन्य आनन्द" लौकिक सुख से सर्वथा भिन्न और परमार्थिक है। लौकिक सुख त्रिगुणात्मक है, जबकि आनन्द निर्गुण है। लौकिक सुख में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है और यह इन्द्रियविषयजन्य आनंद है और अनित्य तथा दुःखान्तरयुक्त होता है। आनन्द (कैवल्य) पुरुष का स्वरूप है और इसमें चैतन्यस्वरूप शान्ति अनुभूत होती है। यह नित्य, दुःखाभाव और आत्मप्रकाश है। अतः यह कहना कि सांख्य ने दोनों में भेद भुला दिया, वस्तुतः अज्ञानजन्य भ्रान्ति है।

सांख्य का उद्देश्य लौकिक सुख नहीं, कैवल्यानन्द है। सांख्य की साधना का लक्ष्य "पुरुष–प्रकृति विवेक" है, जिससे पुरुष अपने असंग स्वरूप में स्थित हो जाए। यही अवस्था "कैवल्य" कहलाती है, जो पूर्ण दुःखनिवृत्ति और स्वरूपानन्द की प्राप्ति है। लौकिक सुख के प्रति सांख्य उदासीन है, क्योंकि वह परिवर्तनशील है। अतः सांख्य ने न केवल भेद माना, बल्कि आनन्द को लौकिक सुख से उच्चतर स्तर पर प्रतिष्ठित किया है।

पुरुष का आनन्द "स्वरूपलक्षण" है, अनुभवजन्य नहीं। सांख्य में आनन्द किसी घटना का परिणाम नहीं, बल्कि स्वरूप का प्रकाश है। जब विवेकज्ञान से पुरुष स्वयं को प्रकृति से भिन्न जानता है, तब प्रकृति की प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं और उसी में आत्मस्वरूप आनन्द प्रकट होता है। इस आनन्द में कोई विषय नहीं होता; अतः यह लौकिक सुख नहीं, परमानन्द है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. ईश्वरकृष्ण. (2009). सांख्यकारिका (संस्कृत एवं हिन्दी व्याख्या सहित). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
2. कपिल. (ई.पू.). सांख्यसूत्रम् (आर्चिव.ओआरजी से डाउनलोड किया गया)
3. चंद्र, एस. (2012). भारतीय दर्शन का इतिहास. दिल्ली: भारतीय विद्या भवन.
4. दासगुप्ता, एस.एन. (1922). ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसफी (वॉल्यूम-1). लंदन: कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. राधाकृष्णन, एस. (1952). इण्डियन फिलॉसफी (वॉल्यूम-1). लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. शर्मा, चंद्रधर (1991). भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन, नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.